International Journal of Research in Hindi
www.hindijournal.in
ISSN: 2582-3493
Received: 20-05-2021, Accepted: 04-06-2021, Published: 19-06-2021
Volume 3, Issue 2, 2021, Page No. 40-44

भूमंडलीकरण की प्रक्रिया से संघर्ष करता आदिवासी समाज

Dr. Nusrat Jabeen Siddiquee
Ph.D, Assistant Professor, Mirza Ghalib College**,** Gaya**,** Magadh University, Bihar, India

सारांश

आदिवासी जीवन और उनके विस्थापन से जुड़ी समस्याएँ बुद्धिजीवियों और साहित्यकारों के लिए बहुत ही संवेदनशील सवाल रहा है । नब्बे के बाद में आदिवासी जीवन पर लिखने वाले साहित्यकारों ने इन विषयों को अपने साहित्य को मुख्य विषय बनाया है । यह तो एक सच है कि किसी भी विकास कार्य के लिए विस्थापन एक आवश्यक तत्त्व है; क्योंकि खनिज तत्वों, जल संसाधनों या अन्य इसी प्रकार की स्थिति वाले क्षेत्र में ही विकास का कार्य होगा । अब इस क्षेत्र विशेष में बसे लोगों को वहाँ से विस्थापित भी करना होगा । सरकार की यह जिम्मेदारी है कि वह विकास परियोजनाओं के लगने से पहले विस्थापन प्रक्रिया की कार्य योजना बना ले । सरकारी फाइलों पर यह कार्य- योजना तैयार होती है; परंतु व्यवहारिक धरातल पर लागू होने पर इन योजनाओं का लाभ उन तक नहीं पहुँच पाता, जोकि सीधे तौर पर इन परियोजनाओं से प्रभावित होते हैं । विस्थापन की योजना के क्रियान्वयन में कई तरह की कमियाँ होती है, जिसका फायदा भ्रष्ट शासनतंत्र, प्रभावशाली लोग एवं बिचौलियें उठाते हैं । इस स्थिति को देखते हुए सहज ही इन विकास कार्यक्रमों की भूमिका संदिग्ध लगने लगती है; क्योंकि देश की आबादी का एक हिस्सा इन विकास कार्यक्रमों के तहत विनाश की तरफ धकेल दिया जाता है । औद्योगीकरण को विकास का एक मानक माना गया । जब बात विकास की होती है तो ज्यादातर लोगों को इससे कोई विरोध नहीं होता; क्योंकि विकास नीतियाँ अपने साथ कुछ लाए या न लाए कल के बेहतर भविष्य की उम्मीदें जरुर ले आती हैं । भविष्य में जब यह सपने केवल टूटते हुए ही नहीं, बल्कि विकास की चपेट में आए लोगों के जीवन को बिखेर देते हैं, तब यह सवाल अवश्य उठ खड़ा होता है कि आखिर विकास किसका और किन की शर्तों पर । विकास प्रक्रिया में विस्थापित हो जाने वाले लोगों को तो विकास का फायदा नहीं मिलता, बल्कि वह विकास उनकी कुर्बानी पर हो रहा होता है ।

मूल शब्द: भूमण्डलीकरण, असुर समुदाय, लुटेरी नीति, सांस्कृतिक संघर्ष, उत्तर आधुनिक, औद्योगिक क्रांति, नयी आर्थिक नीतियों, उदारीकरण, तीसरी दुनिया

प्रस्तावना

आदिवासी समाज जो एक लम्बे समय तक हिन्दी साहित्य में एक अनछुआ पहलु रहा था, उसे पूरी प्रमाणिकता व संवेदनशीलता के साथ नब्बे के बाद के हिन्दी उपन्यासकारों ने अपने कथा का केन्द्र बनाया है। रणेन्द्र का 'ग्लोबल गाँव के देवता', संजीव का 'पाँव तले की दूब', वीरेन्द्र जैन का 'पार' उपन्यास भूमण्डलीकरण के दौर से गुजर रहे आदिवासियों, वनवासियों के जीवन का संतृप्त सारांश प्रस्तुत करता है। ये कथा-साहित्य आदिवासी समुदाय के लगातार चल रहे

जीवन संघर्ष का प्रमाणिक दस्तावेज है। ये उपन्यास भूमण्डलीकरण के दौर के व्यापारियों की शोषण प्रक्रिया को उजागर करते हैं। विकास और बदलाव के नाम पर किए जाने वाले धोखे और राजनीतिक चालाकियों को, ये उपन्यासकार अपने उपन्यासों के जरिए उजागर करने का सराहनीय प्रयास करते हैं। विकास के जरिए पैदा हो रहा असंतुलन एवं आदिवासियों का शोषण इन उपन्यासों का अहम मुद्दा है। भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया अपने पीछे यह सवाल छोड़ जाती है कि आखिर यह विकास के नारे किसके लिए हैं? विकास के केन्द्र में कौन लोग है; क्योंकि इस विकास प्रक्रिया में आदिवासी समुदाय का जीवन और अधिक त्रासदीपूर्ण हो गया है।

अध्ययन क्षेत्र

नब्बे के बाद के हिन्दी उपन्यासकारों ने आदिवासी समाज की स्थिति को अपने कथा का केन्द्र बनाया है। आदिवासी समाज जो एक लम्बे समय तक हिन्दी साहित्य में एक अनछुआ पहलु रहा था, उसे पूरी प्रमाणिकता व संवेदनशीलता के साथ उजागर किया है। रणेन्द्र का ‘ग्लोबल गाँव के देवता’, संजीव का ‘पाँव तले की दूब’, वीरेन्द्र जैन का ‘पार’ उपन्यास भूमण्डलीकरण के दौर से गुजर रहे आदिवासियों, वनवासियों के जीवन का संतृप्त सारांश प्रस्तुत करता है। ये कथा-साहित्य आदिवासी समुदाय के लगातार चल रहे जीवन संघर्ष का प्रमाणिक दस्तावेज है। ये उपन्यास भूमण्डलीकरण के दौर के व्यापारियों की शोषण प्रक्रिया को उजागर करते हैं। विकास और बदलाव के नाम पर किए जाने वाले धोखे और राजनीतिक चालाकियों को, ये उपन्यासकार अपने उपन्यासों के जरिए उजागर करने का सराहनीय प्रयास करते हैं। विकास के जरिए पैदा हो रहा असंतुलन एवं आदिवासियों का शोषण इन उपन्यासों का अहम मुद्दा है। भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया अपने पीछे यह सवाल छोड़ जाती है कि आखिर यह विकास के नारे किसके लिए हैं? विकास के केन्द्र में कौन लोग है; क्योंकि इस विकास प्रक्रिया में आदिवासी समुदाय का जीवन और अधिक त्रासदीपूर्ण हो गया है। शायद यह पूरी व्यवस्था अपना विकास इन आदिवासियों के बलिदान पर कर रही है।

रणेन्द्र अपने उपन्यास ‘ग्लोबल गाँव के देवता’ में शोषण की इसी प्रक्रिया को उजागर करते हैं। हाशिये पर धकेल दिए गए असुर समुदाय के सुख-दुख को व्यक्त करता हुआ यह उपन्यास ‘ग्लोब गाँव के व्यापारियों’ की लुटेरी नीति का भी खुलासा करता है। असुर जनजाति के बारे में यह धारणा की वह दैत्य या दानव थे, एक लम्बे सांस्कृतिक संघर्ष का परिणाम है। पौराणिक कथाओं में देवताओं और असुरों के बीच संघर्ष की एक लम्बी परम्परा मिलती है। देवताओं के राजा इन्द्र से लेकर उत्तर आधुनिक समय के ‘ग्लोबल गाँव के देवताओं’ अर्थात् व्यापारियों तक यह संघर्ष जारी है।

धर्मग्रंथों, पुराणों, कथाओं में चित्रित यह लड़ाई उत्पादन और उत्पादन साधनों को लेकर रही। उद्योगों के विकास, औद्योगिक क्रांति, नयी आर्थिक नीतियों, भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया ने एक बार फिर इस क्षेत्र को उत्पादन के केन्द्र में ला खड़ा किया। यह क्षेत्र प्राकृतिक रूप से सम्पन्न है। औद्योगिक विकास के लिए बॉक्साइट एक महत्वपूर्ण खनिज है, जिससे अल्युमिनियम बनाया जाता है। मीलों तक फैले पहाड़ और छिटपुट जंगलों में दूर-दूर उसर-बंजर से खेत जिसके नीचे बॉक्साइट दबा हुआ है। यही बॉक्साइट इस क्षेत्र को खनिज सम्पदा सम्पन्न बनाता है, तो यहाँ के निवासियों को गरीब और बिमार। जिन कम्पनियों को बॉक्साइट निकालने का अधिकार मिलता है, सरकारी शर्तों के मुताबिक बॉक्साइट निकलने के बाद जो गड्ढा बन जाता है, उसे भरने की जिम्मेदारी उन्हीं कम्पनियों की है, “अब एग्रीमेंट की पहली शर्त है कि बॉक्साइट निकालकर गड्ढ़ा भरना है, तो बीसों साल से क्यों नहीं हो रहा यह काम? हमें तो लगता है कि जानबूझकर सरकार भी मटिया रही है। चाहती है, पाट पर आबादी जितना जल्दी खत्म हो बॉक्साइट निकालने में उतनी ही आसानी होगी।” कम्पनियों और सरकार की लापरवाही से इस इलाके में जो बड़े-बड़े गड्ढे बन जाते हैं, उन्हें न भरे जाने के कारण हर साल बिमारियाँ फैलती है। बॉक्साइट निकालने वाली कम्पनियाँ तो हर साल अपना

मुनाफा बढ़ा रही है, लेकिन इस क्षेत्र के लोगों की परेशानियाँ कम होने की बजाय बढ़ रही है। ''देखिएगा कि मक्का की एक बरसाती फसल के भरोसे जिन्दगी कितनी कठिन हो जाती है। मजूरी और जंगल का सहारा जो नहीं हो तो लोग फिर आसाम-भूटान निकल जाए। लेकिन एक तरफ इन खदानों ने मजूरी दी तो दूसरी तरफ बर्बादी के संरजाम भी खड़े किए। पिछले पच्चीस-तीस सालों में खान-मालिकों ने जो बड़े-बड़े गड्ढ़े छोड़े हैं, बरसात में इन गड्ढों में पानी भर जाता है और मच्छर पलते हैं। सेरेब्रल मलेरिया यहाँ के लिए महामारी है, महामारी।'' विकास और भूमण्डलीकरण की इस प्रक्रिया ने असुर समुदाय को खदानों में मजदूरी तो दिला दी; साथ में उन्हें मलेरिया का अभिशाप भी दे दिया। कल तक जिन जमीनों के वे मालिक थे, आज उन्हीं जमीनों पर उनकी हैसियत मजदूर की हो गई है।

वही बॉक्साइट निकालने वाली कम्पनियाँ और उनसे जुड़े लोग सुविधा सम्पन्न एवं समृद्ध हो रहे हैं। रूमझुम इनके कॉलोनियों को 'इन्द्रलोक' की संज्ञा देता है। ''हमारा बॉक्साइट यहाँ से डेढ़-दो सौ किलोमीटर दूर जहाँ प्रोसेस होकर अल्युमिनियम में ढलता है, वह जगह सिलवर सिटी ओव इंडिया कहलाती है। एक बार घूमने का मौका मिला था। फूलों-पार्कों से लदी हरी-भरी ख़ूबसूरत कॉलोनी। एक से एक स्कूल, चमचमाते बाज़ार, क्लब घर, योगा केन्द्र, लाइब्रेरी, खेल के मैदान और न जाने क्या-क्या! सुन्दर-सुन्दर कुत्तों को घुमाती सुन्दर-सुन्दर महिलाएँ, बर्फ के गोले-से गुलथुल उजले-उजले बच्चे, रंग-बिरंगी गाड़ियाँ लगा इन्द्रलोक धरती पर उतर आया हो।'' जिस क्षेत्र से बॉक्साइट निकाल कर लाया जाता है, उस क्षेत्र की बदहाल स्थिति को भी उपन्यासकार ने रुमझुम के माध्यम से व्यक्त किया है। रुमझुम कहता है कि, ''पानी और जलावन जुटाने में हमारी औरतों की आधी जिन्दगी गुजर जाती है। बरसात के गिंजन की तो मत पूछियें। बंद खदान के सैकड़ों गड्ढे विशाल पोखरों में बदल जाते हैं। कीचड़ में लोटते सूअरों और हमारे बच्चों में फर्क करना मुश्किल हो जाता है।.... यहाँ मकई का घट्टा खा-खाकर जीभ पर घट्टा पड़ जाता है। हमारे ज्यादातर घरों में भात-दाल सब्जी भी पर्व-त्योहार का भोजन है।'' भूमण्डलीकरण एवं उदारीकरण के पीछे जो गरीबी हटाने के नारे थे। दुनियाँ भर के बहुत सारे अर्थशास्त्री ऐसा मानते थे कि उदारीकरण से गरीबी और भुखमरी की समस्या समाप्त हो जाएगी। इन अर्थशास्त्रियों ने एक माहौल तैयार किया जिससे तीसरी दुनिया के देशों को लगा की अब दरिद्रता का पूरे दुनियाँ से सफाया हो जाएगा। मुक्त बाजार से गरीब देशों का विकास हो सकेगा, जिससे पूरी दुनियाँ में खुशहाली का युग आएगा। लेकिन इस उदारीकरण ने असुर समुदाय की जीवन स्थिति को और बद-से-बदत्तर कर दिया।

एक दिन अम्बा टोली देवी थान पर एक ऐसी घटना घटती है जो सबको झकझोर कर रख देती है। दरअसल लालचन दा के चाचा की बलि चढ़ा दी जाती है। ''यह केवल एक लालचन दा के चाचा की हत्या का सवाल नहीं था और न किसी असुर पर पहली बार या आखिरी बार आक्रमण हुआ था। ना यह पहली बार जमीन के टुकड़े के लिए हत्या हुई थी। यह हजारों-हजार साल से चल रहे घोषित-अघोषित युद्ध की नवीनतम कड़ी मात्र था।'' विकास और प्रगति की कही जा रही इस सदी में घटी इस घटना से सवाल पैदा होता है कि आखिर हम सभ्यता की कौन-सी सीढ़ी चढ़ रहे हैं, जहाँ आदिवासी समुदाय की न तो जमीन सुरक्षित है और न ही उनकी जान। देवी थान पर पड़ा हुआ लालचन दा के चाचा का कटा हुआ सर शायद यह सवाल पूछ रहा है कि, ''हजारों-हजार साल से पीछे हटते-हटते इस पाट पर। धरती का आखिरी छोर। अब यहाँ से कहाँ? नष्ट करने की प्रक्रिया तो आज भी जारी है। जमीन और बेटियाँ चुप-चुप, शान्त-शान्त, किंतु रोज छीनी जा रही।'' सदियों से असुर समुदाय के खिलाफ हो रहे शोषण, उत्पीड़न और मुख्यधारा से धकेल दिए जाने की प्रक्रिया ने लालचन, रुमझुम आदि इन्हीं जैसे नवयुवकों के अंदर जो सालों से गुस्सा पक रहा था। लालचन दा के चाचा के कटे सर ने इन नवयुवकों के गुस्से को संघर्ष की राह दिखाई।

साधारण ग्रामीणवासियों की असाधारण क्षमता का एहसास उन्हें उस दिन हुआ, जब सात दिनों तक खदानों में कोई काम नहीं हो पाया। महिलाओं की शांत भीड़ ने सशस्त्र बलों को

आगे बढ़ने से रोक दिया। असुर, कोल जिस लड़ाई को अपने अधिकारों और घर की लड़ाई मान रहे थे, दरअसल उनकी लड़ाई नयी आर्थिक व्यवस्था में उभरे नए देवताओं से थी। अनजाने में ही इन लोगों ने उन देवताओं को चुनौती दे दी थी। ''नायका देवता लोग, आकाशचारी और ग्लोबल गाँव के वासी थे। उनमें गजब की एकता थी। खदानों की सात दिनों की बंदी और सशक्त बल की वापसी से ग्लोबल गाँव के देवताओं में खलबली-सी मच गयी।''

'ग्लोबल गाँव के देवताओं' ने सुलह-समझौता का रास्ता नहीं चुना, बल्कि उन्होंने नृशंस दमन का रास्ता अख्तियार किया। रूमझुम द्वारा प्रधानमंत्री जी को लिखी चिट्ठी में यह उजागर किया गया था कि टाटा जैसी कम्पनियों ने इस सदी में उनका सबसे ज्यादा नाश किया है। असुरों के हजारों सालों का हुनर धीरे-धीरे खत्म हो रहा है। रुमझुम को आशंका यह भी है कि आठ-नौ हजार बचे असुर भी इस व्यवस्था के चक्र से नहीं बच पाएँगे। रुमझुम की यह आशंका गलत नहीं थी, अपने अस्तित्व की रक्षा करने के लिए चलाए गए संघर्ष के दौरान पहले इन आदिवासियों को पुलिस ने गोलियों से मारा और इस हत्याकांड का विरोध करने वालों की बस को लैंड माइंस के जरिए उड़ा दिया। ''बिखरी हुए देह की जगह पिघला हुआ गरम लोहा वहाँ बहने लगा। लाल पानी-सा लोहा धीरे-धीरे पाट की धरती में समा रहा।... ग्लोबल गाँव के देवता खुश थे। जो लड़ाई वैदिक युग में शुरू हुई थी, हजार-हजार इन्द्र जिसे अंजाम नहीं दे सके थे, ग्लोबल गाँव के देवताओं ने वह मुकाम पा लिया था। असुर-बिरिजिया, बिरहोर-कोरवा, आदिम जाति-आदिवासी सब मुख्यधारा में शामिल होने ही वाले थे। मुख्यधारा की लहरें चाँद छूने को बेताब थीं। वह लहराती-इठलाती राज्यों की राजधानियों से होती बाया दिल्ली, वाशिंगटन डी.सी. की और दौड़ी जा रही थीं।''

उद्योग, विकास और भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया ने यह वादा किया था कि नयी आर्थिक नीतियों का फायदा बाजार के बाहर रह गए लोगों को भी मिलेगा। यह नयी आर्थिक नीति अपने अंदर मानव जाति के हित के लिए सब कुछ समेटे हुए है; परंतु आदिवासी समाज तक व्यवस्था का वह मानवीय चेहरा नहीं पहुँच पाया, उल्टे उनके जंगल, जमीनें, पहाड़, नदियाँ उनसे छीन ली गयी। मुख्यधारा में शामिल करने की बात कहकर उन्हें धाराविहीन कर दिया गया। व्यवस्था में बसे उन शोषण की प्रक्रियाओं का रणेन्द्र ने बहुत ही यथार्थ एवं मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया है, जिसमें अमीर और गरीब के बीच की खाई और गहरी हो गयी है। 'ग्लोबल गाँव के देवताओं' को तीसरी दुनिया केवल एक बाजार के रूप में दिख रही है, जहाँ वे अपना माल बेचकर सिर्फ मुनाफा कमाना चाहते हैं। विकास और प्रगति का यह मॉडल खतरनाक है; क्योंकि यह तीसरी दुनिया के देशों की भाषा, कला, संस्कृति, साहित्य, इतिहास को मिटा देना चाहते हैं। आज पूरे विश्व में भूमण्डलीकरण के तहत अपनायी गयी आर्थिक नीतियों का विरोध एक आंदोलन की शक्ल अख्तियार कर रहा है।

निष्कर्ष

'ग्लोबल गाँव के देवता' उपन्यास आदिवासी समुदाय के लगातार चल रहे जीवन संघर्ष का प्रमाणिक दस्तावेज है। विकास के जरिए पैदा हो रहा असंतुलन एवं आदिवासियों का शोषण इस उपन्यास का अहम मुद्दा है। हाशिये पर धकेल दिए गए असुर समुदाय के सुख-दुख को व्यक्त करता हुआ यह उपन्यास 'ग्लोब गाँव के व्यापारियों' की लुटेरी नीति का भी खुलासा करता है। भूमण्डलीकरण एवं उदारीकरण के पीछे जो गरीबी हटाने के नारे थे। दुनियाँ भर के बहुत सारे अर्थशास्त्री ऐसा मानते थे कि उदारीकरण से गरीबी और भुखमरी की समस्या समाप्त हो जाएगी। इन अर्थशास्त्रियों ने एक माहौल तैयार किया जिससे तीसरी दुनिया के देशों को लगा की अब दरिद्रता का पूरे दुनियाँ से सफाया हो जाएगा। मुक्त बाजार से गरीब देशों का विकास हो सकेगा, जिससे पूरी दुनियाँ में खुशहाली का युग आएगा। लेकिन इस उदारीकरण ने असुर समुदाय की जीवन स्थिति को और बद-से-बदत्तर कर दिया। उद्योग, विकास और भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया ने यह वादा किया था कि नयी आर्थिक नीतियों का फायदा बाजार के बाहर रह गए लोगों को भी मिलेगा। यह नयी आर्थिक नीति अपने अंदर मानव जाति के हित के लिए सब

कुछ समेटे हुए है; परंतु आदिवासी समाज तक व्यवस्था का वह मानवीय चेहरा नहीं पहुँच पाया, उल्टे उनके जंगल, जमीनें, पहाड़, नदियाँ उनसे छीन ली गयी। मुख्यधारा में शामिल करने की बात कहकर उन्हें धाराविहीन कर दिया गया। व्यवस्था में बसे उन शोषण की प्रक्रियाओं का रणेन्द्र ने बहुत ही यथार्थ एवं मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया है, जिसमें अमीर और गरीब के बीच की खाई और गहरी हो गयी है।

संदर्भ ग्रन्थ

1. रणेन्द्र- ग्लोबल गाँव का देवता, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2010, पृष्ठ 14
2. वही, पृष्ठ 13
3. वही, पृष्ठ 16
4. वही, पृष्ठ 17
5. वही, पृष्ठ 32
6. वही, पृष्ठ 34
7. वही, पृष्ठ 52
8. वही, पृष्ठ 100
9. रमणिका गुप्ता, आदिवासी विकास से विस्थापन, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2008
10. बिपिन चन्द्र, मृदुला मुखर्जी, आदित्य मुखर्जी- आज़ादी के बाद का भारत (1947-2000), हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, द्वितीय संस्करण 2002,
11. रणेन्द्र- ग्लोबल गाँव के देवता, भारतीय ज्ञानपीठ, दूसरा संस्करण-2010
12. डॉ. श्यामचरण दुबे - परम्परा, इतिहास बोध और संस्कृति, राधाकृष्ण, संस्करण-1991
13. डॉ. श्यामचरण दुबे- मानव और संस्कृति, राजकमल प्रकाशन,संस्करण -1993
14. डी. डी. कोसम्बी - प्राचीन भारत का इतिहास और सभ्यता, राजकमल प्रकाशन, संस्करण-1993